eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 11, Nov 2022

दलित–विमर्श : स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का सवाल

[1]दिग्विजय कुमार राय
[1]एसोसिएट प्रोफेसर, बी0.एस.एन.वी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, लखनऊ

Abstract

हिन्दी में दलित साहित्य तेजी से उभरती हुई एक धारा है जिसने पूरे हिन्दी साहित्य के पाठ और समझ को नए सिरे से देखने के लिए मजबूर कर दिया है। लेकिन दलित साहित्य को लेकर कई विवाद भी उठ खड़े हुए हैं। इसके अन्तर्वस्तु और स्वरूप एवं रचनाकारों को लेकर में एक बहस चल रही है।

विषय संकेत:– दलित साहित्यकार, कथा साहित्य, गैरदलित एवं दलित–विमर्श।

भूमिका

दलित साहित्य को लेकर एक महत्त्वपूर्ण बहस यह है कि दलित साहित्य के अन्तर्गत केवल दलितों के द्वारा रचित साहित्य को रखा जाना चाहिए अथवा उस साहित्य को भी जो गैरदलितों द्वारा दलितों के जीवन पर लिखे गए हों। एक ओर दलित साहित्यकार जैसे डॉ0 धर्मवीर, ओम प्रकाश वाल्मीकि, मोहन दास नैमिशराय, जय प्रकाश कर्दम, श्योराज सिंह बेचौन, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी आदि मानते हैं कि वास्तविक दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा लिखा गया हो। वे स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का सवाल उठाते हैं। डॉ0 धर्मवीर कहते हैं कि ''साहित्य की वह परिभाषा एकदम खतरनाक है जिसमें इस बात की गुंजाइश रखी जाती है कि गैर दलित भी दलित साहित्य की रचना कर सकता है।

उदारवादी हिन्दू लेखक के साहित्य का मूल्यांकन हिन्दू साहित्य के नाते किया जाना चाहिए, चाहे वह दलित के भले के नाम पर लिखा गया हो। विश्लेषण में उसे दलित के पक्ष में लिखा गया हिन्दू साहित्य कहा जा सकता है, लेकिन दलित साहित्य नहीं।'' वाल्मीकि जी अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं. ''गैर दलितों के जीवन में दलितों का प्रवेश सिर्फ पिछले दरवाजे के बाहर तक है, ठोक वैसे ही दलितों के जीवन में गैर दलितों का प्रवेश नहीं के बराबर है। इसलिए जब कोई गैर दलित दलितों पर लिखता है तो उसमें कल्पना अधिक होती है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण ''नाच्या बहुत गोपाल'' है जहाँ लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि उसने दलितों के जीवन को सिर्फ खिड़की से देखा है। दलितों की पीड़ा के साक्षात्कार को उनको कल्पना अधूरी होती है। यदि किसी घटना या स्थिति में बदलाव अथवा क्रान्ति की संभावना बन रही है, तो उससे पूर्व हो ये लेखक पाला बदल लेते हैं और यथास्थिति बनाये रखने में मदद करते हैं। चाहे प्रेमचन्द का 'सूरदास' (रंगभूमि) या गिरिराज किशोर के 'परिशिष्ट' का नायक या 'धरती धन न अपना' (जगदीश चन्द्र) ये सभी नायक संभावनाओं और संघर्षों की उम्मीदों के बीच पलायन कर जाते हैं, जबकि दलित लेखक इन स्थितियों का सामना करते हुए, इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दलित ही दलित को पीड़ा को समझ सकता है, वही उसको पीड़ा का प्रामाणिक प्रवक्ता भी है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 11, Nov 2022

मैनेजर पाण्डेय और राजेन्द्र यादव जैसे गैरदलित भी कमोवेश यही मानते हैं। मैनेजर पाण्डेय ने अपने एक साक्षात्कार में ज्योतिबा फुले के कथन को उद्धृत किया है कि ''गुलामी की यातना को जो सहता है, वहीं जानता है और जो जानता है यही पूरा सच कह सकता है। सचमुच राख हो जानती है जलने को पीड़ा, कोई और नहीं।'' वे नागार्जुन और अमृतलाल नागर के लेखन में अचेतन रूप में आए सवर्णवादी संस्कारों की ओर अनेक गैर दलित लेखक एवं साथ ही कुछ दलित लेखक यह मानते है कि गर दालतों द्वारा भा दलित साहित्य का सृजन किया जा सकता है। तुलसीराम, जो दलित विचारक हैं, का मानना है कि 'आत्मकथा' को छोड़कर कोई भी लेखक (गैर दलित) अन्य साहित्यिक विधाओं में दलित जीवन का चित्रण कर सकता है और उसे दलित साहित्य ही माना जाना चाहिए। श्योराज सिंह बेचौन, जो प्रामाणिक दलित साहित्य का लेखन दलित द्वारा ही संभव मानते हैं, एक अन्य जगह पर कहते हैं कि ''दलित साहित्य वर्ण जाति के भेदभाव की विषमतामूलक समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विद्रोह के रूप में आता है। यह साहित्य ब्राह्मण भी लिख सकता है। बुद्ध से प्रेरित अश्वघोष और बुद्ध एवं मार्क्स से प्रेरित राहुल इस कोटि में आ सकते हैं। हिन्दुओं के समाज व संस्थाओं से बहिष्कार की पीड़ा इन्होंने नहीं भोगी थी इसलिए इनका दलित साहित्य वैसा प्रामाणिक नहीं होगा जैसा कि एक भुक्तभोगी का होगा। लेकिन ब्राह्मणवाद के समर्थक न होने के कारण से सामाजिक लोकतंत्र के अनुकूल ठहरते हैं। अतः ऐसे गैर दलित विचारक दलित साहित्यकारों के मित्र हैं।'' यहाँ प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से डॉ० बेचौन गैर दलितों के लेखन को दलित साहित्य में शामिल करने से नहीं हिचकते, यशर्ते वह लेखन ब्राह्मणवाद और वर्णाश्रम व्यवस्था एवं संस्कारों के विरुद्ध हो। हो । गैरदलितों की रचनाओं की प्रामाणिकता उनको नजर में इतनी नहीं है, जो न स्वाभाविक ही है।

शिवकुमार मिश्र लिखते हैं कि ''मार्क्स ने सही कहा था कि शासक वर्ग को विचारधारा हो किसी युग की प्रधान विचारधारा होती है। उदार मानसिकता और उदात्त तथा प्रशस्त संवेदना के बड़े–बड़े लेखक तक जाने अनजाने उसे ग्रहण करते और उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। ... दलितों के अधिकारों के पक्षधर तक दलितों के जीवन पर करुणा प्रदर्शित करते हुए उन्हों धर्मशास्त्रों, विचारों तथा व्यवस्थाओं से दूर तक व्यक्त कर चुके हैं। बावजूद इसके मुद्दे पर विमर्श की गुंजाइश बनी हुई है। यह सवाल उठाते हुए कि रचना को पहचान उसके अन्तर्वस्तु के आधार पर हो अथवा उसके रचने वाले कौन है इस आधार पर वे स्वयं ही उत्तर देते हैं कि ''बेहतर हो रचना का स्वरूप और चरित्र उसको अन्तर्वस्तु के आधार पर पहचाना जाए 15 ऐसी रचना में करुणा दया अनुकम्पा या सहानुभूति की जो यात गैरदलित लेखकों की ओर से उठायी सहानुभूति जैसे भाव दलित जीवन के प्रति त्याज्य और अस्वीकार्य तब होने चाहिए जब उनकी प्रेरक मानसिकता उच्च वर्णीय दंभ, ऊँची हैसियत के बोध अथवा अभिजात संस्कारों से बद्ध हो। यदि वह यथार्थ के बोध, उसकी प्रामाणिक प्रस्तुति, आलंबन के प्रति रचनाकार की संवेदनात्मक एकात्मकता, निश्छल अंतःकरण की स्वानुभूति, सह अनुभूति से प्रेरित हो तो ऐसी करुणा की तो हिमायत होनी चाहिए। दुखी और यातनाग्रस्त के प्रति समाज में करुणा का लोप हो जाए तो समाज रहेगा और टिकेगा कैसे? फिर यहाँ प्रश्न केवल करुणा, दया और सहानुभूति का नहीं है। ऐसे साहित्य में शोषक और यातना देने वाली व्यवस्था के खिलाफ रोष और भर्त्सना भी है और पीड़ित लोगों का संघर्ष भी साथ ही सामाजिक यथार्थ के अनुरूप ऐसी रचनाओं में दलितों की पक्षधरता भो। ऐसी स्थिति इन रचनाओं को केवल इस आधार

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 11, Nov 2022

पर दलित साहित्य अथवा लेखन की परिधि से बाहर रखना कि उनके रचनाकार दलित नहीं हैं, इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। क्योंकि फिर इसी तर्क पर यह कहा जाएगा कि किसान जीवन पर प्रामाणिकता के साथ किसान, मजदूरों पर केवल मजदूर, जनजातियों पर केवल जनजाति और नारी जीवन पर केवल नारी हो लिख सकती हैं। यह सही है कि स्वानुभूत यथार्थ अथवा आपबीती का सचमुच कोई विकल्प नहीं हो सकता। किन्तु देखे सुने अथवा संवेदना के स्तर पर आत्मसात् किये गये यथार्थ की भी अपनी एक विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता होती है। इसका साक्ष्य हमें वाल्जाक, टॉल्स्टाय तथा प्रेमचंद एवं अन्य लेखकों में मिलता है। प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन के यथार्थ के प्रामाणिक और मर्मस्पर्शी चित्र दिए हैं।

यहाँ एक और बात उभर कर सामने आती है कि दलित को जनसंख्या में अधिकांश अभी निरक्षर है और इसलिए अपनी संवेदना और अपने जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त कर पाने में अभी अक्षम हैं। ऐसे में कोई गैर दलित व्यक्ति जो दलित जीवन से साक्षात्कार कर रहा हो और अपनी पूरी संवेदना के साथ उनके जीवन संघर्ष को प्रस्तुत कर रहा हो तो ऐसे लेखन को बाहर रखना न्याय नहीं होगा, क्योंकि फिर ऐसे कई मुद्दे 'रिकार्ड' पर आने से रह जाएंगे, जैसा कि दलितों के साथ अब तक होता आया है। उनकी जगह जीवन की तरह साहित्य में भी नहीं अथवा हाशिए भर की थी। शिवकुमार मित्र के शब्दों में ''अतएव सवात यथार्थ की प्रामाणिक, वस्तुनिष्ठ प्रस्तुति का है जिससे रचना विश्वस्त बनती है, मनोगत रूप से यथार्थ को अपनी आकांक्षा के अनुरूप काटछाट कर प्रस्तुत करने का नहीं। दलितों से इतर लेखकों ने दलित जीवन पर जो कुछ भी लिखा है, किसी खास रचना को लेकर मतभेद या मतान्तर हो सकता है, किन्तु कुल मिलाकर ये रचनाएँ दलित जीवन की पक्षधर रचनाएँ हैं, यह मित्र लेखन हैं। दलित साथियों को इस पर गौर करना चाहिए।''

दलित साहित्यकार लेखक आज दलित साहित्य को सिर्फ दलितों द्वारा लिखे साहित्य तक सीमित रखना चाहते हैं तो उसके ठोस कारण भी है। एक तो यह कि हिन्दी में दलित साहित्य की आवाज एक आंदोलन के रूप में पहली बार दलित लेखकों ने ही उठाई आज भी इसके लिए चल रहे संघर्ष में उन्हीं का सबसे ज्यादा हाथ है और यह होना भी चाहिए। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से उनको बात सही है। दूसरे, जैसा कि डां वीर भारत तलवार कहते हैं ''दलित साहित्य को इस तरह सीमित करना आज उसकी अलग पहचान के लिए जरूरी है। दरअसल यह आंदोलन साहित्यिक होने के साथ–साथ अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा का आंदोलन भी है जो अब तक हाशिए पर पड़े रहे समुदाय के लिए स्वाभाविक है। परन्तु जैसा कि वीर भारत कहते हैं कि ''लेकिन जरूरी नहीं कि वे कल भी ऐसे फर्क पर जोर दें। परंपरा का इतिहास भी एक चीज होती है जिससे आदमी जुड़ना चाहता है। डॉ अम्बेडकर खुद को ज्योतिबा फुले की परंपरा से जोड़ते थे हालांकि फुले दलित नहीं थे, शूद्र वर्ण (माली जाति) के थे। अम्बेडकर अपनी परंपरा को और भी पोछे गौतम बुद्ध तक ले जाते थे। डॉ० अम्बेडकर बड़े आदमी थे, समर्थ थे। दूसरे बड़ों के साथ जुड़कर उन्हें अपना व्यक्तित्व खोने का डर नहीं था। हर आंदोलन खुद को प्रतिष्ठित करने के लिए अपनी एक परंपरा और इतिहास खोजता है। इतिहास जितना पीछे तक जाता है, वह खुद को उतना ही गौरवपूर्ण और समृद्ध महसूस करता है। आज के दलित साहित्य की परंपरा अम्बेडकर से पीछे नहीं जाती। यह उनकी फौरी जरूरत हो सकती है (अम्बेडकर के साथ संबंध पर जोर देना)। लेकिन यह उनकी कमजोरी को भी निशानी है। बेशक, वे आज कमजोर स्थिति में है। साहित्य जगत पर सवर्णो का

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 11, Nov 2022

कब्जा है। सवर्णों के वट वृक्ष के नीचे दलित लेखक पनप नहीं सकते। मुमकिन है, आगे आने वाले समर्थ दलित लेखक–कवि अपनी साहित्यिक परंपरा को पीछे तक ले जाएँ। मुमकिन है, दलित साहित्य आंदोलन अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो जाने के बाद आत्मविश्वास और उदारता के साथ गैर दलित साहित्यिक विरासत के सकारात्मक पक्षों से खुद को जोड़े। तीसरे, दलित लेखकों को यह भी भय है कि कहाँ दलित साहित्य को सवर्ण लेखन अपने में आत्मसात् न कर ले। इसकी क्रांतिकारिता, इस आंदोलन की तेजस्विता का हरण न कर ले। जैसा कि मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के साथ हुआ।

कबीर आदि अवर्ण भक्तों से शुरु हुए भक्ति आंदोलन में बाद में सूर, तुलसी आदि सवर्ण भक्त शामिल हुए। मुक्तिबोध ने लिखा है कि इन सवर्ण–भक्तों ने भक्ति आन्दोलन की असली ताकत जाति प्रथा के खिलाफ उसको क्रान्तिकारिता का हरण कर लिया। डॉ० मैनेजर पाण्डेय इसको एक साक्षात्कार में इस रूप में व्यक्त करते हैं ''एक सोची–समझी पद्धति भारतीय सवर्णवादी व्यवस्था में दिखाई देती है। वह यह है कि यहाँ जो बौद्धिक, पौराणिक परंपरा है, जिसे आप मनुवादी परंपरा कहेंगे, उसको पद्धति यह है कि वह विरोधी विचार को या रचना की पहल तो उपेक्षा करती है, जब उपेक्षा से विरोधी विचार या रचना नहीं मरती है, तो फिर उसका वह विरोध करती है। अगर वह विरोध से समाप्त नहीं होती है, तो उसको विकृत करती है, अगर वह विकृत करने से भी नष्ट नहीं होती है, फिर उसकी क्रान्तिकारी धार को मिटाकर और अपनी सर्वग्राही वाह फैलाकर उसको अपने भीतर समेट लेती है। यह जो पद्धति है वह संत कवियों के साथ भी लागू हुई। मुझे यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है कि उत्तर दक्षिण तक जितने भी संत कवि हैं. उनके जीवन पर लिखी गई रचनाओं को देखिए, तो जिस प्रक्रिया की बात मैंने की, जिसमें उपेक्षा, विरोध, विकृति, समाहार की प्रक्रिया जिसकों में कहता है, यह साफ लागू होती दिखाई देती है।'' कहीं न कहीं यह खतरा दलित लेखकों के मन में मंडरा रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस आशंका को इन शब्दों में व्यक्त करते है– कहा जा रहा है, वे ब्राह्मणवादी एवं सामन्ती सोच के मूल्य हैं। पन्त हों या महादेवी, या फिर निराला, प्रसाद के चिन्तन को धारा क्या है? वर्ण व्यवस्था के प्रति उनका दृष्टिकोण क्या है? ब्राह्मणवाद पर वे क्या सोचते हैं? इन तमाम तथ्यों पर गहन विश्लेषण एवं गंभीर अध्ययन, मनन और उन्हें व्याख्यायित करने की आवश्यकता है, जिसे समीक्षक अनदेखा करते रहे हैं।

अब उपरोक्त तर्कों को गंभीरतापूर्वक समीक्षा की जाए। आज की परिस्थितियाँ मध्यकाल अथवा प्राचीन काल से काफी बदल गई हैं। जो शक्तियाँ मध्यकाल में जिस रूप में कार्य कर रही थीं, अब ठीक वैसा संभव नहीं है। विज्ञान, मीडिया, शिक्षा, लोकतंत्र की विचारधारा संविधान और राजनैतिक (सत्ता) समीकरणों में परिवर्तन ने चीजों को ठीक वैसा रहने नहीं दिया है जो कि पूर्ववर्ती काल में थीं। आधुनिक काल में खासतौर से वर्तमान काल की वैज्ञानिक उपलब्धियों ने समाज को एक नया आयाम दे दिया है। एक तो कबीर आदि संत कवियों की तमाम घुमक्कड़ता और अपनी वाणियों के प्रचार–प्रसार के बावजूद, उनके विचारों की पहुँच जनसामान्य तक उस रूप में नहीं संभव थी, जितनी सूचना प्रौद्योगिकी के विकास, मीडिया, टेलीविजन, पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं द्वारा आज समाज के अधिकांश लोगों तक समय है। दूसरे, शिक्षा और लोकतंत्र ने भी लोगों को जागृत करने का अभूतपूर्व कार्य किया है। कबीर आदि के समय में अवर्ण जातियों में शिक्षा का प्रसार लगभग नहीं था। इने–गिने न लोग ही ज्ञानशालाओं की चौखटों को लांघ पाए थे। कबार तो स्वयं कहते हैं

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 11, Nov 2022

'मसि कागद हुआ नहि कलम यहि हाथ' रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार निर्गुण परम्परा में सुंदरदास हो एक ऐसे व्यक्ति हुए, जिन्हें समुचित शिक्षा मिली जब इस आंदोलन के उन्नायकों को ही शिक्षा नहीं मिल पाई थी तो जनसामान्य का क्या कहना। ज्ञान–शिक्षा के अधिकार से तो ये बचत हो थे। आज भी देश की औसत साक्षरता के मुकाबले दलितों में साक्षरता का प्रतिशत काफी कम है। लेकिन फिर भी मध्यकाल के मुकाबले स्थिति बहुत बेहतर है।

संविधान और आरक्षण एवं लोकतंत्र की विचारधारा ने एक नयाँ चेतना पैदा की है जिसने दलित समुदाय को जागृत सजग एवं सचेत किया है और आज उनमें वह विवेक आ चुका है कि चीजों को भलीभाँति समझ सकें। आज दूध का दूध और पानी का पानी करने में सक्षम बन चुके हैं। आज दलित लेखकों में अनेक योग्य समीक्षक उभरकर आ रहे हैं। उन्हें अब भरमाया और बहकाया नहीं जा सकता है। तीसरे, सत्ता समीकरणों में परिवर्तन ने भी स्थितियों को बदला है। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं ''असल में निर्गुण, सूफी और सगुण अर्थात् पूरा भक्ति आन्दोलन जिस सामंती समाज के विरुद्ध खड़ा हुआ था, वह उससे अधिक शक्तिशाली साबित हुई। उसने भक्ति आन्दोलन की सभी धाराओं को धीरे–धीरे अपने अनुकूल बना लिया। 13 उस समय शासक सामंत वर्ग शक्तिशाली था, जो अधिकांश में सवर्ण ही थे और उन्हें कमजोर अवर्ण लोगों को कुचलने या दबाने में अधिक परेशानी का सामना नहीं करना पड़ा। लेकिन आज सत्ता समीकरण बदल चुके हैं। दलितों में जबरदस्त राजनैतिक उभार आया है। दलित राष्ट्रपति से लेकर दलित मुख्यमंत्री, राज्यपाल, सांसदों एवं उच्च अधिकारियों को मौजूदगी यह दिखाती है कि आज उन्हें दबाना अथवा कुचलना उस रूप में संभव नहीं है। यद्यपि आज भी अत्याचार और शोषण की घटनाएँ घटती हैं लेकिन उनका प्रतिरोध और प्रतिकार दोनों ही किया जा रहा है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि आज दलित लेखन एवं चेतना का समाहार उस रूप में संभव नहीं है जैसा पूर्ववर्ती कालों में हुआ। उपरोक्त समस्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि गैर दलितों की रचनाओं को भी दलित साहित्य में शामिल किया जाना एक उचित कदम होगा। लेकिन सवर्णों को अपनी मानसिकता बदलनी होगी। 1931 को गोलमेज कान्फ्रेन्स में गाँधीजी की जिद थी कि अम्बेडकर कौन होते हैं दलितों का प्रतिनिधित्व करने वाले? मैंने अपना सारा जोवन दलितों के लिए दिया है और आगे भी दूँगा। दलितों का प्रतिनिधित्व में करूंगा न कि अम्बेडकर आगे चलकर गाँधी जी की दृष्टि कुछ में सुधार हुआ, लेकिन यह दृष्टि सवर्ण प्रगतिशीलों में अभी भी बनी हुई है।

वीर भारत तलवार लिखते हैं 'सवर्णों को अब समझना चाहिए कि जिन दलितों को वे अब तक बाणों देते आए हैं, वे दलित अब खुद बोलने लगे हैं, अपने पैरों पर खड़े होने लगे हैं। इसलिए अपना प्रतिनिधित्व अब उन्हों को करने दिया जाए। सवर्ण लेखकों का ज्यादा स्वस्थ नजरिया यह होगा कि दलित लेखकों को अपना साहित्यिक आंदोलन खड़ा करने में वे जो मदद पोछे रहकर दे सकते हैं, बदले में कुछ पाने की भावना रखे बिना, वह देते रहे। वे खुद पहले की तरह दलित जीवन के बारे अपने ढंग से लिखते रहें, लेकिन दलित लेखकों के द्वारा बड़े किए गए साहित्यिक आंदोलन के नेता बनने की इच्छा न करें।समस्त विवेचन को इति विख्यात मराठी दलित लेखक शरणकुमार लिया के शब्दों में करेंगे– ''दलित साहित्य दलितेतर नहीं लिख सकेंगे ऐसी एकांगी समीक्षा नहीं हुई।''

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 1, Issue 11, Nov 2022

सन्दर्भ सूची–

- डॉ धर्मवीर दलित महिला, 1999 0 38,
- ओमप्रकाश वाल्मीकि कल के लिए दिसम्बर 1998, पृ0 18.
- राजसिंह चौन दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद (स० सदानन्द शाही), पृ. 105,
- वहाँ पू0 102. योर भारत तलवार दलित साहित्य की अवधारणा, वर्तमान साहित्य मई–जून, 1938, पृ० 14
- मैनेजर पाण्डेय दलित साहित्य (विशेष फीचर), हम दलित, सितम्बर, 1996, पृ० 6
- आमप्रकाश मात्मीकि दलित साहित्य का सौन्दशास्त्र, राधाकृष्ण माता, 2001, पृ० ११
- रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास,नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, तेईसवां संस्करण, पृ0 48,
- मैनेजर पाण्डेय भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, 1991, पृ0 49,
- वीर भारत तलवार दलित साहित्य की अवधारणा, वर्तमान साहित्य, मई जून 1998, पृ0 14